बहुमत

जुलाई | 2021 | अंक | 108

कला, साहित्य और संस्कृति की मासिक पत्रिका

✦ मनुख के गीत गाओ ✦

जय प्रकाश

एकांत श्रीवास्तव हिंदी के सुप्रतिष्ठ कवि हैं। वह अपनी कविताओं की लोक–संवेदना के लिए जाने जाते हैं। छत्तीसगढ़ के लोक–जीवन की अनेक छवियाँ उनके यहाँ मिलती हैं । इन छवियों और उनके पीछे छिपे जीवन–यथार्थ की स्याह रेखाओं के सहारे भारतीय गांव का वस्तुगत मानचित्र भले न बन पाये, मानवीय उद्यम, जिजीविषा, संघर्ष और साहस की मार्मिक गाथा के रुप में उसकी पहचान असंदिग्ध है । उसे किसी समाज शास्त्रीय वास्तविकता से सत्यापित करने की आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि उसके पीछे संवेदना के अनगिन आख्यान और शताब्दियों से निर्मित सामुदायिक जीवन की अखण्ड परम्परा है, जो दुर्भाग्य से इधर छीजने लगी है। एकांत श्रीवास्तव की हिंदी – कविताओं में आधुनिक विकास और उदारीकरण की शक्तियों के अवतरण के पूर्व के गाँव के मर्म चित्र उजागर हुए थे। उन कविताओं की तरफ ध्यान गया तो लगा था कि घर–परिवार, पास–पड़ोस, रिश्तों–नातों और प्रकृति की आत्मीय उपस्थिति से भरा–पूरा एक नया काव्य–संसार उजागर हुआ है। धरती के हृदय से उपजे लोकराग का अनूठा काव्य–मुहावरा उसके जरिये हिंदी–कविता में ताजगी लेकर आया था। इस बीच एकांत लोक के इस अनुभव–संसार को लोकभाषा में भी रचते रहे, जो अब जाकर उनकी छत्तीसगढ़ी कविताओं के रुप में प्रकाश में आया है।

अविचल लोकपरायणता

पिछली सदी के अंतिम दशक के दौरान हिंदी – कविता में लोक की जो अपूर्व प्रतिष्ठा हुई थी, उसे सम्भव करने में एकांत श्रीवास्तव का महत्वपूर्ण योगदान था। **याद किया जा सकता है कि उस दौर में उभरे लोकराग के कवियों को इस तर्क के आधार पर खारिज करने के प्रयत्न भी हुए थे कि उनकी कविताएं सिंथेटिक किस्म की हैं , और लोक के कठोर जीवन–संघर्ष को, समूचे खुरदरेपन के साथ चित्रित करने की बजाए, उनकी कविताएं भावुकतापूर्ण और सुकोमल काव्य–संसार में विसर्जित कर देती हैं । यह आक्षेप इतना संघातक था कि बीसवीं सदी का अंतिम दशक बीतते–बीतते हिंदी–कविता में लोक के प्रति विराग पसरने लगा और जिन कवियों को उनकी लोक–संवेदना के लिए जाना जाता था, लोक के प्रति उनका रूझान धीरे–धीरे कमजोर पड़ने लगा।** इसी दौर में स्वयं लोक भी विकास के नृविज्ञान की चपेट में आकर तेजी से छीजने लगा था। कहने की जरूरत नहीं कि इस छीजते लोक से हिंदी – कविता की लोक–संवेदना को किसी भी तरह से सहारा और समर्थन मिलना मुश्किल था। कम–से–कम उस दौर में तो यही लग रहा था। लोक–संवेदना की कविता का भौतिक परिप्रेक्ष्य, उसका यथार्थ–लोक या वस्तुगत प्रतिरूप कमजोर पड़ने लगा। शायद इसलिये भी लोक की जमीन पर रची गयी कविताएं वास्तविकता से विछिन्न या विशफुल थिंकिंग में घटित होती जान पड़ी थीं। यह प्रचारित भी किया गया था उनका संदर्भ दरअसल सुखद पीड़ा के मर्मस्पर्शी बोध से पगा एक भरा–पूरा स्मृति – लोक है, वास्तविक जगत नहीं।

जाहिर है, एकांत श्रीवास्तव के लिए भी ये परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं रह गयी थीं। लेकिन उन्होंने अविचलित रह कर उनका सामना किया। अपनी संवेदना के मातृप्रदेश से विलग हो कर नयी जमीन की तलाश करने का आसान विकल्प चुनने की बजाए उन्होंने अपनी जमीन की गहराई में जाने और उसके भीतर के अनछुए अनुभवों के उत्खनन का प्रयत्न किया। सवाल किया जा सकता है कि कविता में जब लोक ही अप्रासंगिक हो चला था, तब उसे अपनाये रखने में भला क्या विवशता थी ? कहीं वह समय से बचने के लिए निरापद शरणस्थल थो नहीं था ? यह सवाल किया भी गया था कि क्या लोक में प्रत्यक्ष समय से मुठभेड़ के लिए हथियारों से लैस होकर तैनात रहने की थोड़ी–सी भी जगह रह शेष रह गयी है ? दरअसल समय का वेग तब इतना दुर्द्धष जान पड़ा था कि उससे आँख मिला कर सामना करने के अलावा कोई उपाय एकबारगी सूझता नहीं था। सीधा–सरल रास्ता तो यही था कि सामने के समय का निरुद्विग्न बखान करते रहा जाये, जैसा कि तब से लेकर आज तक ज्यादातर हिंदी–कविता करती चली आयी है । ऐसा इसलिए कि व्यतीत को पूरी तरह अप्रासंगिक मान लिया गया था। कहना कठिन है कि विगत की कीमत पर वर्तमान को मोल लेने का, समकालीन होने की सुविधा जुटाने का यह अवसर–लोलुप उपाय था, या जोखिम से बचने की अल्पकालिक रणनीति। लेकिन **क्या भौतिक वास्तविकता के बिला जाने पर मनुष्य का स्मृति –लोक भी खो जाता है ? क्या स्मृति के वरदान से वंचित होकर कोई मनुष्य या समुदाय सांस्कृतिक रुप से जीवित रह सकता है ? स्मृति ही जीवन की नब्ज में संस्कृति की धड़कन पैदा करती है। एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक धड़कन को सुना जा सकता है। जाहिर है, इन कविताओं में स्मृति की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।**

कविता में लोकप्रियता के प्रपंच और समय से टकराने के चालू कारनामों से बच कर एकांत ने जोखिम का रास्ता अपनाया। उस दौर में लोक के प्रति उनकी काव्यात्मक प्रतिबद्धता और अपने मूल स्थान से अनुराग का इससे उजला प्रमाण और क्या होगा कि उन्होंने लोक के मर्म को छूने की कोशिश में हिंदी के साथ छत्तीसगढ़ी में भी कविताएँ लिखीं। इन कविताओं के लिखे जाने के समय पर गौर करें । उनकी ज्यादातर छत्तीसगढ़ी कविताएं हिंदी की लोकवादी कविता के उतार के दौर में यानी इस सदी के आरंभ के समय लिखी गयी हैं। छत्तीसगढ़ी में लिख कर उन्होंने वस्तुतः लोक के प्रति निष्ठा, अनुराग और प्रतिश्रुति को ही व्यक्त किया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि छत्तीसगढ़ी लोकजीवन एकांत की मूलभूत काव्यभूमि है। उसमें विकसित यथार्थ को, और उसकी त्रासद नियति को उन्होंने एकाग्रता और निष्ठा के साथ पढ़ने का प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से निश्चय ही उन्हें लोकपरायण कवि कहा जा सकता है। सहज ही अनुभव किया जा सकता है कि लोक–जीवन की गहरी आस्था उनकी कविताओं में निरंतर छलकती है।

इन कविताओं में यह भी देखा जा सकता है कि लोक पर उनका विश्वास पहले की अपेक्षा दृढ़ हुआ है और वह अपनी मूल काव्य–भूमि के कुछ और समीप आये हैं, बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि लोक की शुद्ध –सघन प्राणवायु उनके भीतर कुछ अधिक मात्रा में समा गयी है और उनके पाँव लोक के कीचड़–कांदों में, छत्तीसगढ़ी जन के दु ख, अभाव और पीड़ा में कुछ अधिक लिपट गये हैं । यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि इन कविताओं में भाषा और अनुभव के बीच वह फाँक नहीं रह गयी है जो लोक–जीवन के टटके अनुभव को जनपद की खरी भाषा से खड़ी बोली हिंदी में अंतरित करने की प्रक्रिया में प्रायः अपने–आप उत्पन्न हो जाया करती है। ये कविताएं लोक की मातृभूमि से उपजी और अनुभव की मातृभाषा की कविताएँ हैं।

एकांत की छत्तीसगढ़ी कविताओं में छत्तीसगढ़ का ग्राम्य–जीवन अपने मौलिक विन्यास में लगभग अक्षत–अक्षुण्ण रुप में मौजूद है। इन्हें कवि की इस आत्मस्वीकृति के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए कि **इन कविताओं से झाँक रहा गाँव एक भूल–बिसरा गाँव है जो अब आधा ही बचा है। यह आधा गांव स्मृतियों के जल में डूबा है। आधा विस्मृति के अतल में समा चुका है। सच कहें तो वह गाँव भौतिक रुप से अब आधा भी बचा नहीं है। अगर बचा है तो मनुष्य का संघर्ष, वंचना, यंत्रणा और उसकी जिजीविषा।** धरातल पर जो दीख रहा है, वह दरअसल विराट वैश्विक गांव का छोटा सा खण्ड मात्र है। **पिछले तीन दशकों की अवधि में घटित विश्वव्यापी परिवर्तनों के अँधड़ में छत्तीसगढ़ के गाँव भी अछूते नहीं रह गये। वे क्षत–विक्षत हैं। उनका आर्थिक–सांस्कृतिक ताना–बाना छिन्न–भिन्न हो रहा है। इतिहास की दैत्य शक्तियाँ तरह–तरह के भेष धारण कर उतरी हैं और अपने मायाजाल को ग्राम्य जीवन**

की भीतरी गहराइयों में, मनुष्य के मनोलोक मे फैला चुकी हैं । छत्तीसगढ़ का बीता हुआ गाँव , सच पूछा जाये तो इस मनोलोक से खिसक कर अपने सुख–दुख, आशा–हताशा, संकल्प–विकल्प और समूची सामुदायिकता के साथ स्मृतिलोक में विस्थापित हो गया है। एकांत श्रीवास्तव की ये कविताएं स्मृतिलोक में बसे गाँव को खोजने का जतन करती हैं। बल्कि यह कहना अधिक संगत होगा कि ये कविताएं आधुनिक विकास की आत्मघाती लहरों में डूबते गाँव का पुनर्वास करती हैं ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि नष्ट हो चुके इस गाँव को भौतिक रुप से बहाल नहीं किया जा सकेगा । यह नितांत असंभव है। लेकिन अगर कहीं इसकी कोई संभावना बच रही है तो कवि के अलावा भला और कौन इसे संभव कर सकता है – कवि जो वस्तुतः अपनी सृष्टि का सर्जक ब्रह्मा है । एकांत अपनी इन कविताओं में भूले–बिसरे घाँव के भीतर प्राण फूंकते और उसे पुनर्जीवित करते हैं। न तो यह पूर्णतः कल्पसृष्टि है, न ही खालिस यथार्थ । दोनों के संतुलन में सधा एक विलक्षण काव्यात्मक अनुभव–लोक है।

स्मृति लोक में बसा गांव

स्मृति लोक में बसे इस गाँव में लोग हैं , अपनी आकांक्षाओं, दुखों और उम्मीदों और प्रेम और संवेदना से लबालब हृदय के साथ । गरीबी और वंचना के एहसास के बीच आनंद के क्षण ढूंढ लेने की स्पृहा है। अतृप्ति और अबूझ प्यास है, हृदय में निरंतर जलती आग की जलन है। प्रेम के विस्मरण हैं, और स्मरण के लिए वह अमूल्य निशानी है जो देह पर नहीं, हृदय में गोदना के रुप में अंकित है और जिसके आगे दुष्यंत की शकुंतला द्वारा प्रस्तुत चिन्हारी का क्लासिकल अनुभव भी फीका मालूम पड़ता है, और लोक–जीवन में यह प्रेम है कि प्रखर होकर अमारी के फूल को दहकते सूर्य में बदल देता है। भादों की घनी अंधेरी रात में प्रिया की आँखों में जुगनू चमकता है और काँस के फूल की तरह उजास देती उसकी स्मृति हृदय में आलोकित है। कार्तिक पूर्णिमा के स्नान के बाद पवित्र हुई देह के साथ मन–प्राण भी प्रेम के जल में डुबकी लगा कर पवित्र हुआ है : 'कातिक पुन्नी म/नदिया नहाए कस पबरित/आज ए चोला/ए अंतस/मन–परान। **(कार्तिक पूर्णिमा में / नदी स्नान–सी पवित्र / आज यह काया / यह आत्मा / मन प्राण)**' यहाँ प्रेम में स्मृतियाँ कांटे सी कसकती हैं तो उन्हें पीड़ा के काँटे से ही कुरेद कर निकालने की विवशता है : 'सुरता ह गड़थे त सुरता ले हेरथों / पीरा ले बड़े नई हे कोनहो काँटा /सुरता के पीरा अउ मया के पीरा/ पीरा ह गड़थे त पीरा ल हेरथों। **(यादों का काँटा गड़ता है / तो उसे निकालता हूँ यादों के काँटे से /दर्द से बड़ा नहीं है कोई काँटा / यादों का दर्द और प्रेम का / दर्द का कांटा गड़ता है / तो उसे निकालता हूँ दर्द के ही काँटे से)**' अनुराग, व्यथा, स्मृति, विस्मरण और विश्वास की नींव पर खड़े इस प्रेम का परिसर मानव–हृदय की परिधि लाँघ कर मानवेतर जीवों तक फैल गया है। इसलिये लोक – समुदाय सरीसृपों में भी उसके विस्तार को सहज भाव से देखता है। उसे बेमेल प्रजाति के सर्पों के अभिसार और परस्पर गुत्थमगुत्था होने के दृश्य में प्रेम की प्रबल शक्ति की अभिव्यक्ति का अनुभव होता है और उसकी संवेदना का प्रसार कृत्रिम सामाजिक वर्जनाओं से मुक्ति के वृहत्तर अभिप्राय तक पहुँचाता है : 'कहाँ डोमी/कहाँ असोढ़िया/परेम नइ देखे जाँत–पाँत, कुल अउ गोत/नई देखे ऊँच–नीच, धरम–अधरम नइ देखे / परेम देखथे परेम / परेम चाहथे। **(कहां नाग/ कहां असोढ़िया / प्रेम नहीं देखता जात–पाँत, कुल और गोत्र / नहीं देखता ऊँच–नीच, धर्म–अधर्म / प्रेम देखता है प्रेम / प्रेम चाहता है प्रेम)**' प्रेम यहाँ धर्म की ऊँचाइयों का स्पर्श करता है।

यहाँ मछुआरों का दैनिक यथार्थ है जिसमें मछलियाँ पकड़ने की सामूहिक क्रिया के बीच, भाग्य में कितनी मछलियाँ लिखी हैं, का अनुमान, और मछुआरे की स्त्री के हाथों से साँप–जैसी दिखती बाम्बी मछली के डर कर छूट जाने का दृश्य है । मेला है , जिसमें आसपास के गांवों से आये लोगों का मेलजोल, कुशल क्षेम है, सजी हुई दुकानों में जुटे या झूला झूलते युवा स्त्री–पुरुष हैं, कोदो की पत्तियों को चबा कर लाल–लाल होंठ–रंगे पान खाने का भ्रम देते निर्धन ग्रामीण हैं जो इस तरह प्रसन्नवदन इतराते घूमते हैं कि पता भी नहीं चलता कि जेब में एक पैसा नहीं है । फिर भी मेले का आनंद ले रहे हैं : 'कोदो के पाना ला चबाय हों अइसे/ जानो–मानो खाए हों पान/ लाली लाली रचे हे मुँहूँ / मड़ई म घुमथौं अउ अइसे मेछराथंव/ कोन्हों पार नइ पाही / के एक्को ठन पइसा नइ हे खिसां म। **(कोदो की पत्तियों को चबाया है इस तरह / जैसे मैंने खाया हो पान / लाल–लाल रचे हैं होंठ / मेले में घूमता इतरा रहा ऐसे / किसी को पता चलेगा नहीं / कि एक भी पैसा नहीं जेब में)।**'

यहाँ भरी दोपहर में आया परदेसी बटोही है जिसे गाँव की स्नेही बुढ़िया नीम की छाँह देती, घड़े का शीतल जल पिलाती और हालचाल पूछती है। बूढ़े बाबा हैं जो क्षणिक भेंट में अपना दुख और प्रेम उड़ेल देते हैं। यहाँ आत्मीयता का स्रोत फूटता है और अनुराग – विह्वल मार्मिक क्षण उजागर होते हैं । फिर गाँव में अपने हृदय की पीड़ा को पीकर गाती हुई माँ है जिसकी आवाज आषाढ़ के पानी की तरह बरस रही है, और जिसके गीत छाती में बाण की तरह कसकते हैं : 'असाढ़ के पानी कस बरसत हे दाई के अवाज ।**(आषाढ़ के पानी जैसी / बरस रही है / माँ की आवाज)।**'

कृषि – संस्कृति यहाँ सर्वत्र स्पंदित है । आषाढ़, सावन और भादों के श्रम–जीवन के चित्र हैं । आषाढ़ में खेती के कठिन कार्यकलाप के बीच धरती की सलेट पर बादल जब पानी के गीत लिख रहे होते हैं, तब हरियाली के आगमन की सूचना में पत्तों के दिन बहुरते हैं, और जगह–जगह डबरों से भरे पानी से मैना प्यास बुझाती है। **भादों की रात के अँधकार में स्मृति का काँस खिलता है। तब घने जंगल में पनटोरा नाला उफनता है और उसे पार करने की कोशिश में ग्वालिन जब लुगरा उठाती है तो उसकी गौर जंघा में अंकित गोदना के फूल सहसा भीग जाते हैं। किसान के साथ जुता बैल खेत की मेड़ पर अनथक सींग मारता है और सहसा धरती को दोनों सींगों में उठाये तेज गति से दौड़ता आता है, फिर क्रोध में मानो धरती को पटक देता है कि अब यह जीने लायक नहीं रही।** प्रतिवाद की यह सांकेतिकता गहरे अर्थ व्यंजित करती है। लेकिन किसान–जीवन की आशंकित त्रासदियाँ भी हैं। खेत की मेड़ पर उगी रक्सी धरती के हरे रक्त को जादूगरनी की तरह चूस लेती है। अकाल की कुशंका में किसान की छाती फटने लगती है। और जब सचमुच अकाल पड़ता है तो विनोद कुमार शुक्ल की विख्यात कविता 'रायपुर–बिलासपुर संभाग' का दृश्य साकार हो उठता है, जिसमें रोजगार के लिए अपनी धरती से दूर परदेस जाते मजदूरों का समूह रेलगाड़ी में चढ़ने की कोशिश में सामान–असबाब बमुश्किल सम्हालता जद्दोजेहद कर रहा होता है । इस अफरातफरी की तस्वीर खींचने के बाद एकांत एक मार्मिक काव्योक्ति के जरिये गँवई मनखे की यातना को प्रकट करते हैं – 'छुटथे देस, सेंहुड के डार म रोवथे पँड़की।**(छूट रहा देश / सेंहुड़ की डाल में रो रही है पड़की)।**'

लेकिन कृषि–संस्कृति के इस परिवेश में उत्सव का उल्लास और उत्तेजना भी है। दीवाली के उत्साह में लाठी भांजता ग्वाला मानो आकाश को मथ डालता है और जब लाठी जमीन पर पटकता है तो लगता है, लाठी की आवाज पानी की लहर की तरह दौड़ने लगती है। यह धान–लुवाई का समय होता है, जब नवान्न का उल्लास खेतों में स्वर्ण शस्य बन कर उगा होता है। किसान खेत में उसे खुशी–खुशी बटोरता है और खलिहान से फसल लेकर गाड़ी से जब वह कोठार में लौटता है तो रास्ते में झरे अन्न को चुगने पँड़की उतरती है, मगर गाड़ी के पहिये की आवाज सुन कर फुर्र से उड़ जाती है : 'कोनहो सोन बर किंजरथे खदान म / मे हा लूथों सोन अपन खार म / गाड़ा रावन म झरे हाबे धान / पड़की चिरई दाना बर उतरथे / गाड़ी चलथे त उड़ा जथे भर्र ले। **(कोई सोने के लिए / भटकता है खदान में / मैं काटता हूँ सोना अपने खेत में / बैलगाड़ियाँ गुजरने से / जो रास्ता बना हुआ है खेतों में / उस पर झड़े हैं दाने / पंडुक चिड़िया / दानों के लिए उतरती है / बैलगाड़ी चलती है / तो उड़ जाती है भर्र से)।**'

इस गांव में मिट्टी के घर और पत्तों के छप्पर हैं जहाँ मौसम के प्रहारों से

जूझते, अभावों का सामना करते, अचार की फाँक के साथ बासी–बात खाकर दम्पती राजा–रानी की तरह ठाठ से रहते हैं। हर बरस भादों की वर्षा में मिट्टी का यह घर ढहने को होता है लेकिन जिजीविषा है कि हर बैशाख में फिर से दुरुस्त कर देती है।

यहाँ सामुदायिकता का सदियों से संचित अनुभव है जिसमें रक्त–संबंध से परे, परिवार की चौहद्दी से बाहर, नातेदारी विकसित करने की स्पृहा होती है और पारिवारिकता का विस्तार स्नेह–सौहार्द के सहज मानवीय रिश्तों में चरितार्थ होता है । छत्तीसगढ़ में ऐसे रिश्ते एक अनूठी पारिवारिकता का सृजन करते हैं। दो व्यक्तियों के बीच फूल भेंट कर, गंगाजल या दौनापन अथवा मांगल्य सूचक वस्तु का आदान–प्रदान कर मित्रता का सम्बंध स्थापित करने की परंपरा है । मितान के इस सम्बंध का निर्वाह सगे सम्बंध की तरह किया जाता है। फूल बबा ऐसा ही रिश्ता है। फूल बबा दादा के मितान हैं । वृद्ध देह से श्रम न छूटा। लेकिन संकल्प और हौसला भी न छूटा। फूल पोते के हर सवाल के जवाब में वे अथक–अपराजेय संकल्प दुहराते हैं । वह रस्सी बुनते हैं, जिससे अश्वमेघ के घोड़े को बाँध लेंगे, काँटेदार झाड़ी को काटते हैं ताकि यमराज का रास्ता रोक सकें, लोहार से चिमटी बनवा रहे हैं कि उससे हृदय में गहरे तक गड़े दुख के काँटे को निकाल सकें :

'लोचनी बनवाथे लोहार कर फूल बबा / ए लोचनी ल का करबे बबा ? /का हेरबे काँटा गड़े हस बिकट जे पाँव म / न हीं, हेरहूँ दुख ल / गड़े हे अंतस मजे गहिरी। **(चिमटी बनवा रहे हैं लोहार से दादा / इस चिमटी का क्या करोगे दादा ? क्या निकालोगे काँटे / गड़े हैं खूब जो पांव में / नहीं, निकालूँगा दुःख को / गड़ा है हृदय में जो गहरा।)**'

सामुदायिकता के धागे से बंधे इस जीवन के हाशिये पर घुमंतू देवार हैं जो फन काढ़े साँप को थामते और जड़ी–बूटी बेच कर लोगों की सेवा करते हैं और हरदम घर–गिरस्ती का भार कंधों पर उठाये एक जगह से दूसरी जगह विचरते रहते हैं।

आसपास की सम्पूर्ण वनस्पतियाँ और जीवजगत गाँव के इस चित्र में विद्यमान हैं। परिवेश से कवि के तादात्म्य और उसके सूक्ष्म निरीक्षण कौशल का उदाहरण परमुटकी चिड़िया है जो पेड़ या छप्पर पर नहीं, खेत में मिट्टी के ढेलों के बीच घोंसला बनाती है और किसान प्रार्थना करता है कि हवा–पानी से उसका घोंसला सुरक्षित रहे। कवि ने उसे फुलचुग्गी चिड़िया की बहन कहा है। जीवजगत के साथ किसान– जीवन का नाता योगक्षेम का है । सच कहें तो समूची ग्राम्य संस्कृति लोकमंगल और स्वस्ति–कामना के भाव बोध में आकार लेती है । लोक सदैव सुख–संपत्ति और संग्रह–वृत्ति की बजाए नेह को बचाने का उपक्रम करता है :

'ओ मोर नास अउ सिरजन के देव/ कर दे नास धरती ले / भूख अउ दुकाल के /दगा अउ लबारी के / लरई–झगरा के कर दे नास / भाई ह भाई के चुहकथे लहू/मितान ह देवथे दगा/ सिरज अइसे संसार / के पंच अउ पंचायत के झन परे काम/काँही नास होए त सोना अउ चाँदी / महल अउ अटारी /काँही बाँचे त मया मइनसे के /बूंद भर पानी/ आँखी म बाँचे राहय। **(ओ मेरे नाश और निर्माण के देव / कर दो नष्ट धरती से / भूख और अकाल को / धोखा और झूठ को / लड़ाई–झगड़े को कर दो नष्ट / भाई ही भाई का पीता है खून / दोस्त देता है दगा/सिरजो ऐसा संसार/ कि पंच और पंचायत का / न पड़े काम / यदि कुछ नष्ट हो, तो नष्ट हो / सोना और चाँदी / महल और अटारी / यदि कुछ बचे तो / बच जाए प्रेम इंसान का / बूँद भर आँसू आँखों में बचा रहे)।**'

लोक–समाज अपशकुन और देवता के कोप से बचने के लिए खेत में दीपक लेकर, काँटों –भरे मार्ग से देवालय के लिए फूल लेकर और परदेस के लिए बरसों का संचित प्रेम लेकर जाने को आगाह करता है। यह टोटका है, लेकिन जाहिर है, लोक के टोटकों में भी सहज स्वस्तिभाव स्वमेव विद्यमान है। यह लोक–निर्देश है जिसका उल्लंघन करने पर अशुभ होगा। प्रेम में ऐसी एकात्मता कि तालाब के तट से गुजरते हुए उसमें खिले कमल के फूलों की सुषमा भी दिखाई न पड़े। उधर ध्यान गया कि समझो प्रेम झर गया :

'कोन डाहर जाँव ? काँही नी दिखे /न तरिया के पार न खोखमा के फूल / आँखी म समाय हे / ए काखर रुप। /अँगरी झन दिखाहू/झर जही मया। **(किस तरफ जाऊँ ? कुछ नहीं दिखता / न तालाब का किनारा / न फूल कुमुदिनी के / आँखों में समाया है / यह किसका रूप ! उँगली मत दिखाना / झड़ जाएगा प्रेम)।**'

इस गांव में सारी आश्वस्तियों के बीच अकाल, भूख, अपमान, फरेब का पल–पल फैलता दुर्गम पसरा है कि लगता है, जीवन निरंतर दुखों से भरा बबूल वन हो गया है। हर दुख धूल के नीचे छिपे काँटे की तरह चुभने की राह देख रहा है : *'जिनगी होगे हे बँबरी वन / एक काँटा हेरथों / त गड़ जथे दूसर / ए रद्दा अइसन हे / के हर दुख तोपाय हे धुर्रा म / काँटा असन।* **(जीवन हो गया है बबूल वन / एक काँटा निकालता हूँ / तो गड़ जाता है दूसरा/यह रास्ता ऐसा है /कि हर दुख छुपा है धूल में / काँटे की तरह।)**' लेकिन यहाँ उन शक्तियों की अचूक पहचान भी है, जो सामाजिक–आर्थिक वैषम्य पर आधारित यथास्थिति को बनाए रखने के लिए सामंती या नव–साम्राज्यवादी दुष्चक्र रचती हैं । अँधेरे में डूबे घरों के बीच 'दुरिहा ले दिखथे अँधियार म गौंटिया के घर के अंजोर **(दूर से दिखता है अंधेरे में / साहूकार के घर का उजाला।)**' की तल्ख अभिव्यक्ति में प्रतिवाद की उठान को लक्ष्य किया जा सकता है। फिर मौजूदा दौर के जैव–साम्राज्यवाद के षड्यंत्र के तहत अन्न की देसी और पारंपरिक प्रजातियों के लुप्त होने की त्रासदी को कैसे भुलाया जा सकता है । **विष्णुभोग, नागकेसर, गुरमटिया, दुबराज, जयफूल जैसी धान की देसी किस्मों की जगह इंद्राणी, मसुरी, सोना मासुरी, महामाया आदि संकर नस्ल को बोने वाला किसान अधिक उपज के लालच में अपनी जैविक संपदा से वंचित हो चला है। ऐसे में एक किसान जयफूल धान के बीज बोने के संकल्प के साथ जब आगे आता है तो यह महज जैव–संरक्षण का साहसिक कदम – भर नहीं है। यह कारपोरेट पूंजीवाद और सर्वग्रासी बाजार के खिलाफ उसका प्रतिरोध भी है।**

भारतीय कृषि पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का शिकंजा उत्तर – औपनिवेशिक घटना नहीं है । पारम्परिक खेती के सदियों से निर्मित आंतरिक सुरक्षा–चक्र में आधुनिक तकनीक का हस्तक्षेप भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही चला आ रहा है – खास कर रासायनिक उर्वरक और जैव–प्रौद्योगिकी पर आधारित हरित क्रांति के दौर से ।एकांत की कविता उस दुरभिसंधि के प्रतिकार की ओर इशारा करती है। गौर किया जाना चाहिए कि इन कविताओं में लोक की पीड़ा, दुख, संघर्ष, और प्रतिरोध के साथ उस दुष्चक्र की ओर भी संकेत है जिसके चलते किसान आज की त्रासदी का शिकार है।

सांस्कृतिक अतीत का प्रवाह : महानदी–क्षेत्र

इन कविताओं में छत्तीसगढ़ का सांस्कृतिक अतीत और जीवन–दर्शन भी धड़कता है। नाथ योगियों और निर्गुण संतों के उपदेशों से अनुप्राणित लोकमानस मुक्ति के दर्शन में विश्वास करता है। छत्तीसगढ़ में कबीर पंथ और संत घासीदास के सतनाम – दर्शन की लोकव्याप्ति सर्वविदित है। छत्तीसगढ़ी लोक ने संत–काव्य में प्रयुक्त अनेक रुपकों के जरिये अध्यात्म और मुक्ति के मर्म को आत्मसात किया है। एकांत की कविता में वह बाँस के पिंजरे में कैद मैना के रुपक में जीव, ब्रह्म और संसार को समझने की कोशिश करता है और अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासा में मुक्ति के लोकदर्शन की शरण में जाता है : *'फूल ल बाँध लुहू, ओखर महक ल नई। चिरई ल बाँध लुहू, ओखर गीत ल नई।* **(फूल को बाँध सकते हो / उसकी महक को नहीं / पंछी को बाँध सकते हो / उसके गीत को नहीं)**' लोकमानस पर कभी योगियों और निर्गुनियों के विचारों का प्रभाव इतना गहरा था कि कहीं–कहीं गांव के नौजवान घर–बार त्याग कर जोगी हो जाते थे। एक कविता सुखरू धीवर के जोगी हो जाने का मार्मिक वृत्तांत रचती है जो आधी रात के सन्नाटे में न जाने किस जंगल की ओर निकल गया है। उसकी पत्नी उसके चप्पलों को पकड़ कर पति के वियोग में सीतामाता या

यशोधरा माता की तरह बिलख रही है। यह श्रमजीवी का निष्क्रमण है– मुक्ति की ओर प्रयाण।

मुक्ति की इस अवधारणा में सिर्फ आत्ममुक्ति नहीं , समष्टि मात्र की मुक्ति का विचार समाहित है। छत्तीसगढ़ी लोक सदैव उस साधु वचन का अनुसरण करता है जो गाता है तो याद रहता है कि इस संसार में कोई रो रहा है, भोजन ग्रहण करता है तो भूलता नहीं कि कोई भूखा है, और रास्ते पर चलते समय याद रखता है कि अगला कदम चींटी को बचा कर रखना है : *'रंगथों त नई भुलावँ/के रद्दा के चाँटी ल बचाके / धरना हे पांव।* **(चलता हूँ तो नहीं भूलता / कि रास्ते की चींटी को बचाकर / रखना है पाँव)'** परपीड़ा के प्रति ऐसी संवेदनशीलता में लोक के स्वभाव में है। इसी से वह धरती की व्यथा को महसूस करता है और मनुष्य की रक्षा की गुहार लगाता है, मनुष्य के गीत गाता है : *'सिमसाम जंगल म फूले हे परसा / फूले हे परसा फेर बिलखथे धरती / बिलखथे धरती / के मनुख ल झन मारो / मनुख के गीत गाओ।* **(निर्जन जंगल में फूले हैं टेसू / फूल हैं टेसू पर बिलखती है धरती / बिलखती है धरती / कि आदमी को मत मारो / आदमी का गीत गाओ।)'**

इन कविताओं के इतिहास– भूगोल और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य पर विचार करें और इनके स्थानीय संदर्भों की तलाश करें तो कहा जा सकता है कि ये महानदी – क्षेत्र की कविताएँ हैं। महानदी की संततियों का जीवन प्रवाह इनमें सहज तरंगित है। कवि अपने मूल स्थान के जीवन संदर्भों से रागात्मक संबंधों के चलते बार–बार अपने परिवेश की ओर लौटता है और उसे ही रचता है। महानदी – तट पर विकसित समृद्ध कृषि – संस्कृति के साथ श्रमजीवी मछुआरों का जीवन भी है। 'मतावर' कविता उनके दैनंदिन यथार्थ को ही व्यक्त करती है। नदी में कार्तिक – स्नान के प्रसंग एकांत की हिंदी कविता में भी आये हैं । उनकी छत्तीसगढ़ी कविता में वह अद्भुत ढंग से प्रकट हुआ है। प्रेम में भीगा हुआ मन नदी में कार्तिक स्नान के बाद स्वच्छ हुई देह की तरह पवित्र हो उठता है। महानदी की रेत पर गर्मियों में तरबूज की खेती होती है। देखने से लगता है, नदी इन खेतों से हट कर उन्हें जगह देते हुए बह रही है। जलती रेत पर झोपड़ी बना कर गिरस्ती सम्हाले किसान शीतल–सुस्वादु तरबूज उगाता है और राहगीर की प्यास बुझाता है : *'भुइयाँ बरथे अकास/सुरुज हा फेंकथे आगी / कलिंदर के भीतरी समाए हे नदिया / के बुताही बटोही के पियास।* **(तप रही है भूमि, जल रहा आकाश / सूर्य फेंक रहा अग्नि / पर तरबूज के भीतर समायी है नदी / कि बुझेगी बटोही की प्यास)'** तरबूज पैदा करने वाले किसान का कठिन जीवन महानदी की श्रम–संस्कृति का ही हिस्सा है। महानदी के धार्मिक –आध्यात्मिक महत्व और उससे उपजी आस्था उसमें सोंढूर और पैरी नदी के त्रिवेणी – संगम से निर्मित राजिम तीर्थ क्षेत्र की पंचकोशी परिक्रमा की परंपरा में चरितार्थ होती है। इसका वृत्तांत 'पंच–कोसी' शीर्षक कविता में प्रस्तुत किया गया है। इसमें छत्तीसगढ़ी लोक का सहज स्वस्ति – भाव व्यक्त होता है, जब परिक्रमावासी श्रद्धालु यात्रा के सारे निजी कष्टों को भुला कर सम्पूर्ण मानवता के कल्याण की प्रार्थना करता है :

'ओ मोर नास अउ सिरजन के देव /कर दे नास धरती ले / भूख अउ दुकाल के / दगा अउ लबारी के / लरई – झगरा के कर दे नास /भाई ह भाई के चुहकथे लहू/मितान ह देवथे दगा / सिरज अइसे संसार / के पंच अउ पंचायत के / झन परे काम / कांही नास होए त सोना अउ चाँदी / महल अउ अटारी / काँही बाँचे त मया मइनसे के / बूँद भर पानी आँखी म बाँचे राहय /कल नइ पड़े जीव म/ ओ चम्पेसर महादेव /तड़पथ रहिथे परान। **(ओ मेरे नाश और निर्माण के देव / कर दो नष्ट धरती से / भूख और अकाल को / धोखा और झूठ को / लड़ाई – झगड़े को कर दो नष्ट / भाई ही भाई का पीता है खून / दोस्त देता है दगा / सिरजो ऐसा संसार / कि पंच और पंचायत का / न पड़े काम / यदि कुछ नष्ट हो तो नष्ट हो सोना और चाँदी/ महल और अटारी / यदि कुछ बचे तो / बच जाए प्रेम इंसान का / बूँद भर आँसू आँखों में बचा रहे / विरक्त रहता है मन / ओ चम्पेश्वर महादेव / तड़पते रहते हैं प्राण।)'**

एकांत श्रीवास्तव की छत्तीसगढ़ी कविताओं में प्रार्थना और स्वस्ति –कामना की ध्वनि सर्वत्र सुनी जा सकती है। लोक की अकुंठ सहिष्णुता और तुष्टिभाव से उपजा प्रार्थना का यह धीरज वंचित पीड़ित लोक को आंतरिक शक्ति देता है। लोक के भीतर अपार बेचैनी है, जो बार–बार इन कविताओं में व्यक्त होती है। 'तपते सूर्य की प्रखरता और सूखी नदी के जलपाखी' के रूपक में इस बेचैनी और तितीक्षा का मर्म उजागर हुआ है। यह बेचैनी कहीं–कहीं मुक्तिबोधीय विकलता और असमंजस में रुपांतरित हो जाता है : भरपूर नींद लेने वाला किसान भी बेचैनी में बार–बार करवट बदलता है : उसका मन अस्थिर है, और संताप से भरा हुआ है कि वह भरपेट सोता है, मगर कहीं कोई साथी भूखा है। आधी रात कौन बिलख रहा है ? कौन पुकार रहा है ? किसी जगह सुकून नहीं पड़ता, तो मन कह उठता है – *'सरायपाली जाँव के बसना ?* **(सरायपाली जाऊँ कि बसना)'** या आस्था की प्राणशक्ति अनुभव करने के बावजूद पंचकोशी परिक्रमा करते हुए श्रद्धालु व्याकुल है कि *'कुलेसर जाँव के कोपेसर / फिंगेसर जाँव के पटेसर / के चम्पेसर महादेव के दुआरी म /टेकँव माथा / के कल नइ पड़े जीव म / तड़पत रहिथे परान।* **(कुलेश्वर जाऊँ कि कोपेश्वर / फिंगेश्वर जाऊँ कि पटेश्वर / या चम्पेश्वर महादेव की चौखट पर / टेकूँ मत्था/ कि विरक्त रहता है मन / तड़फते रहते हैं प्राण)'** (कहां जाऊं, दिल्ली या उज्जैन ? की बेकली और अंतर्द्वंद से तुलनीय) तमाम दुखों से गुजर कर भी उसका मन–प्राण अपनी धरती से बंधा हुआ है। इसे छोड़ कर वह भला कहीं क्यों जाए, जबकि खारून नदी का पानी खारा नहीं है और चंदना–चमसूर के अमरूद कड़वे नहीं हैं। व्याकुल मन की पीड़ा के बावजूद आत्म–संतोष और धैर्य की ताकत से वह इस धरती पर टिका हुआ है। वह इस धरती का फूल है, इसी धरती पर झरेगा। धरती के कल्याण के लिए वह उगा है। वह धरती का कल्पवृक्ष है। न वह पत्थर है, न ठूँठ। श्रम के जीवन में वह संस्कृति का सृजन करता रहेगा।

'सात–सात बरसा के बिजली /दउड़थे ओखर लहू म /सात–सात समुद्दर के पानी / ओखर जाँगर म सूखथे / तब बनथे बूँद भर पछीना। **(सात–सात बारिशों की बिजली / दौड़ती है उसके खून में / सात–सात समुद्रों का पानी / उसकी देह में सूखता है / तब बनता है बूंद भर पसीना।)'**

प्रगीत की लोक संरचना

इन कविताओं में एकांत के कवि–स्वभाव के अनुरूप प्रगीतधर्मिता है। संरचना और वस्तु–विन्यास की दृष्टि से एकांत की छत्तीसगढ़ी–कविताएं उनकी हिंदी – कविताओं से भिन्न नहीं हैं। प्रगीत–विधा की नितांत आत्मनिष्ठ ऐकांतिकता और व्यक्तिपरक संवेदना से अलग रास्ते पर चलते हुए जब हिंदी – कविता ने निराला के प्रगीतों में साहसिक प्रयोगों के जरिए समष्टि–चेतना का स्पर्श किया था, तब हिंदी – प्रगीत ने यूरोपीय रोमेंटिक चेतना से पिंड छुड़ा कर लोकजीवन के धरातल पर अपनी अंतर्वस्तु को पुनर्संघटित किया। बाद में हिंदी की प्रगतिशील कविता इसी राह पर चली। जाहिर है, प्रगीतधर्मिता रुप की अपेक्षा अंतर्वस्तु से निर्धारित होती है। एकांत के यहाँ हिंदी–कविता की प्रगीत–परंपरा का आगामी विकास लक्ष्य किया जा सकता है। वह लोक की नैसर्गिक प्रगीतात्मकता को आत्मसात कर लेती है या उसमें अंतर्लीन हो जाती है। इस तरह वह समष्टिगत अनुभूति बन जाती है। लेकिन लोक से गहरे तादात्म्य के बावजूद अंततः यह एक नागरिक कवि की अभिव्यक्ति है। इसलिए इसे लोक–अनुभव की नागरिक परिणति के रुप में देखना असंगत नहीं होगा। इस दृष्टि से इन कविताओं में लोकानुभूति के अपेक्षाकृत परिष्कृत संस्करण को सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है। **लोक– अनुभव को आधुनिक कविता के समकालीन मुहावरे में डालने की कोशिश में एकांत हिंदी में पिछली सदी के पचास और साठ के दशक की प्रगीत चेतना से, यानी वैयक्तिक अनुभूति पर आधारित ग्राम्यधर्मी या जनपदीय किस्म की अभिव्यक्ति से भी अपने को अलगाते हैं। हिंदी में प्रगीत के विकास की यह नयी दिशा अंतिम दशक में खुली थी। यह नवगीत से आगे की दिशा**

है।

महत्वपूर्ण यह है कि समकालीन हिंदी–कविता की प्रगीत–चेतना को एकांत ने छत्तीसगढ़ी में सम्भव किया है। इस नयी प्रगीतात्मकता का आयात छत्तीसगढ़ी कविता को आस्वाद के नये धरातल की तरफ ले जाता है। अभी भी छत्तीसगढ़ी कविता अभिव्यक्ति के नये क्षितिज की तलाश कर रही है। पिछले पाँच दशकों में अनेक कवियों ने छत्तीसगढ़ी – कविता को जीवंत सामाजिक संदर्भों से जोड़ कर समकालीन तेवर दिया। लोक–कविता की वाचिक पद्धति से भिन्न एक नया काव्य–संस्कार उसे दिया, जिसके चलते वह शिक्षित समुदाय की अपेक्षाकृत सौष्ठवपूर्ण लेकिन खरे लोक– अनुभव से संपन्न समकालीन अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बन सकी। इसके बावजूद उसका ठेठ लोकधर्मी स्वर बहुत हद तक बरकरार रहा। उसकी बुनियादी प्रकृति नागरिक स्वभाव की कविता से अब भी भिन्न थी। सच कहा जाये तो छत्तीसगढ़ी में नागरिक स्वभाव की कविता विकसित ही नहीं हो पायी थी, जिसकी संभावना लिखित–मुद्रित परंपरा में कविता के अंतरित होने के कारण या स्वतंत्र भारत में शिक्षा और नागरिक बोध का विकास होने के फलस्वरुप स्वतः निर्मित होनी चाहिए थी। एकांत श्रीवास्तव की छत्तीसगढ़ी कविता मे यह संभावना देखी जा सकती है। उनके यहां लोक का ठेठ और अनगढ़ रुप, अभिव्यक्ति कौशल, कथन–भंगिमा और शिल्प–सौष्ठव की दृष्टि से ही नहीं, अंतर्वस्तु के लिहाज से भी खासा शिष्ट और संस्कारित होकर आता है। इसे छत्तीसगढ़ी कविता के एक नये प्रस्थान के तौर पर रेखांकित किया जाना चाहिये।

लेकिन छत्तीसगढ़ी में प्रगीत के परिष्कार के प्रयत्न में यहाँ उसके मूलभूत लोक–शिल्प की पूरी तरह उपेक्षा नहीं हुई है। एकांत की कुछ कविताओं में लोकगीत की मूल संरचना विद्यमान है, जिसमें किसी भाव, विचार या संवेदना की सतत आवृत्ति में काव्यानुभव आकार ग्रहण करता है। फूलबबा, टोटका, कातिक पुन्नी या साधु बचन जैसी कविताओं में इसे देखा जा सकता है। लेकिन इन कविताओं में किसी काव्य पंक्ति की नहीं, भाव और संवेदना की पुनरावृत्ति हुई है। लोकगीत में सदैव अंतरा की पंक्ति की बार–बार आवृत्ति होती है, जो विश्राम के क्षण या टेक की तरह आती है। एकांत की इन कविताओं में भाव की आवृत्ति होती है, शब्दों का कलेवर भले ही हर बार अलग–अलग हो। यह लोकगीत की प्रकृति के अनुरूप ही है।

ये कविताएँ समकालीन होने की परवाह नहीं करतीं, कम–से–कम उसका दिखावा नहीं करतीं। स्मृति में विस्थापित हो रहे गांव के चित्र रचते हुए भी ये समकालीनता को उसकी शीतल छाया में रचती हैं – बेशक अपने ही सृजनात्मक तरीके से। उनकी समकालीनता एक तरह के स्मृति राग में स्पंदित है। वह इतिहास की तरह व्यतीत नहीं होती, परंपरा बन कर पुनर्जन्म लेती और प्रतिपल पुनर्घटित होती चलती है। वह किसी बौद्धिक उपचार की अपेक्षा न कर निरंतरता के बोध में पुनर्नव होते हुए अग्रसर होती है। इसलिए उसे खारिज नहीं किया जा सकता। इस अर्थ में एकांत की कविता मानवीय संवेदना के सार्वभौमिक आयाम का स्पर्श करती है, जहां मनुष्य की यातना, पीड़ा, आकांक्षा, अनुराग और उसके संकल्प हमेशा जीवन की जड़ में जीवाणु की तरह सक्रिय होते हैं और उसके अनुभव के फूलों –फलों को पोसते हैं। लोक का यह उर्वर प्रदेश अपना भौतिक–सामाजिक अस्तित्व खो कर भी स्मृतियों में जीवित रहेगा। जब तक मनुष्य है, स्मृतियाँ भी जीवित रहेंगी। ये कविताएं उस मनुष्य का आख्यान गढ़ती हैं जो अपनी धरती के अन्न–जल से, और उससे उपजी परंपरा के फल–फूल से पोषित है और उससे एकात्म होने के बोध में धीरे से फुसफुसाता है – '*माटी असन हमर मन।* **(माटी जैसा हमारा मन)**' उसे स्मरण कर कवि भी मद्धिम स्वर में मानो कह उठता है – 'मनुख के गीत गाओ।'

✦✦✦

एकांत श्रीवास्तव की सात कविताएं

(मूल कविता छत्तीसगढ़ी में। स्वयं कवि द्वारा हिन्दी में अनूदित)

✦देवार

देवार आए हैं गांव के बाहर
सोनई बाट में
दाहरा किनारे
नीचे आम्रवन के
डाले हैं डेरा
गड़े हैं उनके तम्बू

लाए हैं ताबीज
और जड़ी–बूटियाँ बेचने को
साथ हैं कुत्ते, नेवले
और साँप पिटारी में
गाँव वाले डरते हैं
कि खा जाते हैं देवार
बिल्ली–चूहे और साँप भी

लालटेन जल रही है
बाँस में टँगी हुई
तीन पत्थरों के चूल्हे में
पक रहा भात
बच्चे खेल रहे लुका–छिपी
छुपे हुए बबूल और करन की ओट में
साड़ी का झूला बंधा है डाली में
सो रहा है झूलता हुआ बच्चा

गा रही है माँ
और लहरें उठ रही हैं
दाहरा के पानी में
कि वह गा रही है
चंद्रमा ठहर गया है आकाश में
और बबूल–वन के बंजर में
खिल रहे हैं फूल

इससे पहले कि
एक जगह का प्रेम इन्हें बाँधे
ये छोड़ देते हैं उस जगह को
कल वहाँ, आज यहाँ
और कल न जाने फिर कहाँ
डलेगा इनका डेरा

बारहों महीने चलते रहते हैं ये
बारहों महीने
चलते रहते हैं साथ–साथ

अंतरंग

एकांत श्रीवास्तव और जय प्रकाश

एकांत श्रीवास्तव हिन्दी के महत्वपूर्ण कवि हैं । 18 फरवरी 1964 को छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले के एक कस्बे छुरा में जन्मे एकांत श्रीवास्तव की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कविता संग्रह : अन्न हैं मेरे शब्द, मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, बीज से फूल तक। कविता का आत्मपक्ष (निबंध), शेल्टर फ्रॉम दि रेन (अंग्रेजी में अनूदित कविताएं), मेरे दिन मेरे वर्ष (स्मृति कथा), नागकेसर का देश यह (लम्बी कविता), बढ़ई, कुम्हार और कवि (आलोचना), पानी भीतर फूल (उपन्यास), चल हंसा वा देश (यात्रा निबंध), कवि ने कहा (चुनी हुई कविताएं) ।

एकांत की कविताएं अंग्रेजी व कुछ भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। एकांत ने लोर्का, नाजिम हिकमत और कुछ दक्षिण अफ्रीकी कवियों की कविताओं का अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद भी किया है। उन्होंने नवम्बर 2006 से दिसम्बर 2008 तक तथा जनवरी 2011 से जून 2017 तक लगभग नौ वर्षों तक 'वागर्थ' के 104 अंकों का संपादन किया। एकांत ने उजबेकिस्तान, इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड, बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, इटली, वैटिकन सिटी, आस्ट्रिया, स्विटजरलैंड आदि देशों की यात्राएं की हैं। अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से सम्मानित। फिलहाल दिल्ली में निवासरत्।

सम्पर्क : 9433135365, 9625297106
shrivastava.ekant@gmail.com

23 दिसम्बर 1959 को राजनांदगाँव (छ.ग.) में जन्म । साहित्य–संस्कृति से संबंधित विभिन्न विषयों पर महत्वपूर्ण लेखन । हिंदी की सभी महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में आलोचनात्मक लेख प्रकाशित। दो पुस्तकें 'कहानी की उपस्थिति' और 'लोक का अंतःसंसार' प्रकाशित । छत्तीसगढ़ी लोक–संस्कृति पर एकाग्र पत्रिका 'लोक मड़ई' के लिए छत्तीसगढ़ की लुप्तप्राय लोकगाथा 'दसमत कैना' और 'कुँवर अछरिया' पर एकाग्र अंकों का संपादन । मुक्तिबोध सम्मानऔर अखिल भारतीय वनमाली आलोचना सम्मान से सम्मानित । जय प्रकाश वर्तमान में शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़ में अध्यापन कर रहे हैं।

सम्पर्क : 9981064205, **jaiprakash.shabdsetu@gmail.com**